International Journal of Arts & Education Research

18वीं शताब्दी में नारी की स्थिति

विपिन कुमार*[1]

[1]शोधार्थी, सी0एम0जे0 विश्वविद्यालय, मेघालय.

18वीं शताब्दी, अवनति और ह्रास का युग थी। जहां यूरोप में ज्ञानबोध का युग चल रहा था, वहां भारत में इस दौरान निष्क्रियता और जड़ता का दौर था। 1707 में अन्तिम मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात राजतंत्र बड़ी तेजी से टूटना शुरू हो गया था, यही कारण था कि मुगल साम्राज्य के पतन के साथ ही असीमित राजनीतिक अव्यवस्था का दौर प्रारम्भ हो गया। वास्तव में मुगल साम्राज्य और इसके साथ भारत में मराठा आधिपत्य इसलिए समाप्त हुए क्योंकि भारतीय समाज मूल रूप से सड़ा हुआ था, राजस्व पूर्णतया भ्रष्ट और अकर्मण्ड हो गया। इसी क्षीणता और भ्रान्ति के वातावरण में हमारा साहित्य, कला और सत्यधर्म सभी लोप हो गए।[1] मुगल साम्राज्य के विरोधियों ने कोई नया ढांचा स्थापित नहीं किया, इसके पश्चात आने वाले युग में स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं दीखती।''[2]

मुगल साम्राज्य के पतन के समय ही काफी लम्बे समय तक तथा बहुत लम्बे क्षेत्र में कोई सत्ता, प्रशासन, कानून या सुरक्षा की व्यवस्था नहीं थी। यही कारण था कि सामन्तवादी तत्व अत्यधिक मजबूत होता जा रहा था तथा सामन्तवादी राज्यों की संख्या भी बहुत अधिक मात्रा में बढ़नी प्रारम्भ हो गयी थी, जिसमें मराठा, अवध, बंगाल, हैदराबाद तथा कर्नाटक आदि राज्य प्रमुख थे। प्लासी तथा बक्सर के युद्धों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि पश्चिमी पूंजीवाद तथा वहां की सामयिक ओजस्विता के समक्ष हिन्दुस्तान की पतोन्मुख सामन्तवादी सामाजिक दशा शोचनीय थी। समाज को इसी समय अस्थिरता तथा असुरक्षा के दौर से गुजरना पड़ा था, तथा उसके अन्दर एक प्रकार की जड़ता आ गई थी। जो कमजोर थे उन पर बलवानों द्वारा अत्याचार हो रहा था तथा सभी ओर अराजकता का तांडव नृत्य हो रहा था।[3] इसी अराजकता और असुरक्षा के वातावरण में सामाजिक, सांस्औतिक और सर्जनात्मक गतिविधियां होना असम्भव सा था।

इस काल में भारतीय समाज में अनेकों कुरीतियां व्याप्त हो चुकी थी। वे सभी कुरीतियां धर्म के नाम पर थी। धर्म भारतीय जनजीवन का केन्द्र बिन्दु रहा है तथा धर्म ने सदैव ही लोगों के सामाजिक तौर तरीकों और रहन-सहन पर अपना बहुत अधिक प्रभाव डाला है।[4] ऐसी परिस्थिति में समाज की स्थिति इस बात पर निर्भर करती थी कि समाज का धर्म कैसा है। 18वीं शताब्दी में भी विभिन्न गुटों और समुदायों के सामाजिक व आर्थिक हित, जाति प्रथा, पारिवारिक और धार्मिक संस्थाओं के जटिल नियमों द्वारा संचालित थे। इस समय के विदेशी पर्यटकों और भारतीय लेखकों ने जो विवरण छोड़े हैं उससे सामाजिक पतन व उदासीनता का चित्र स्पष्ट हो जाता है।[5] 18वीं सदी का भारतीय समाज धर्म, रूढ़ि और परम्पराओं के कठोर बन्धनों में जकड़ गया था। धर्म के संचालकों को, धर्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं रह गया था। धर्म में उच्च आदर्शों का अभाव था। सामाजिक व धार्मिक नियम इतने विस्तृत तथा प्रभावशाली थे कि राजकीय हस्तक्षेप की आवश्यकता भी नहीं रह गयी थी। इस दौरान अधिकांश लोगों के लिए धर्म का अभिप्राय था- कड़े नियम और प्रतिबन्ध, यानी क्या खाओ और क्या न खाओ, किसे छुओ और किससे दूर रहो।[6] वास्तविकता तो यही है कि 17वीं शताब्दी में उपजा धार्मिक कट्टनपन का वैमनस्य 18वीं शताब्दी में भी चला।

धीरे-धीरे जब धर्मों ने आन्तरिक सत्य से अधिक वाह्य रूपों को महत्व देना शुरू किया तो धार्मिक अंधविश्वासा, सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं पर छाने लगे तथा अज्ञानता और अंधविश्वास के बीच ऐसी सामाजिक प्रथाएं भी धार्मिक दृष्टि से मान्य प्रतीत होने लगी, जो वास्तव में हानिकारक और खतरनाक थी। इन्हीं कुरीतियों को समाज का एक बड़ा वर्ग धर्म के

नाम पर कट्टरता से समर्थन भी प्रदान करता था। वास्तव में 18वीं शताब्दी में सामाजिक क्षेत्र में सारहीन, असामाजिक क्रूर एवं अमानुषिक रीतियां तथा प्रथायें प्रचलित थीं, जिन्हें धर्म ने अत्यधिक मजबूत रूप प्रदान किया था। वास्तव में इन प्रथाओं की शिकार मूल रूप से महिलायें ही हुई थीं। यही कारण है कि इस काल में महिलाओं की दशा भी विशेष रूप से शोचनीय थी। बालवध, बालविवाह, विधवाओं को जीवित जला देना और ऐसी ही अन्य सामाजिक बुराईयों को शास्त्रोचित और धार्मिक क्रियायें कराकर दे दिया गया और इसलिए अत्यनत जघन्य कार्य करने से पहले भी किसी के अंतःकरण को कोई क्लेश नहीं होता था।[7] केशवचन्द्र सेन ने 18वीं शताब्दी के भारत का चित्रण इन शब्दों में किया है- ''आज हम अपने चारों ओर जो देखते हैं वह है एक गिरा हुआ राष्ट्र एक ऐसा राष्ट्र जिसकी प्राचीन महानता खण्डहरों में गड़ी हुई पड़ी है। उसका राष्ट्रीय साहित्य और विज्ञान, उसका आध्यात्म व ज्ञान और दर्शन, उसका उद्योग और वाणिज्य, उसकी सामाजिक समृद्धि और गार्हस्थिक सादगी और मधुरता, ऐसी हैं जिनकी गिनती लगभग अतीत की वस्तुओं में की जाती है। जब हम आध्यात्मिक, सामाजिक और बौद्धिक दृष्टि से उजड़े हुए, शोकयुक्त और उदासीन दृष्य-जो हमारे सामने फैला हुआ है- का निरीक्षण करते हैं तो हम व्यर्थ ही उसमें कालिदास का देश, कविता, विज्ञान और सभ्यता के देश को पहिचानने का प्रयत्न करते हैं।''

18वीं शताब्दी में समाज में व्याप्त कुरीतियों में सबसे महत्वपूर्ण स्त्रियों की असन्तोषजनक स्थिति थी। उनहें पुरूषों की अपेक्षा निम्न समझा जाता था। सती प्रथा, कन्या वध, बालविवाह, बहुपत्नी विवाह, पर्दा प्रथा आदि जैसी अनेक कुप्रथायें महिलाओं का जीवन नरक बनाये हुए थी। उन्हें किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी तथा वे समाज में पुरूषों की छाया मात्र बनकर रह गयी थी। प्राचीन काल में भारतीय स्त्री को जो स्वतन्त्रता और दर्जा मिला हुआ था, वह कल्पना के परे की बात थी। लगातार कई शताब्दियों तक मुस्लिम शासन के अधीन रहने से स्त्रियों के प्रति एक तरह की उदासीनता की भावना आ गई थि। स्त्रियों पर पुरुषों द्वारा मनमाने अत्याचार किये जा रहे थे। यद्यपि स्त्रियों को समाज तथा गृह में मान तो था परन्तु समानता की वह भावना नहीं थी जैसे कि आज हम समझते हैं। हिन्दू समाज मुख्यतः पितृप्रधान था तथा घर में पुरूष का ही बोलबाला था। यही नहीं ब्रिटिश राज के प्रारम्भ में तो यह भावना अपने चरम पर थी।

इस काल में पर्दा प्रथा का विशेष रूप से प्रचलन था। हिन्दुस्तान के कई भागों में राजनीतिक ह्रास व अस्थिरता के बढ़ने से अराजकता फैल गयी थी, जिससे हिन्दू और मुसलमानों में पर्दा प्रथा अत्यधिक मजबूत हो गयी। पूरी तरह पर्दे में रहने के कारण न केवल उनका शारीरिक या मानसिक ह्रास हुआ था वरन् उनका जीवन घर की चहारदीवारी तक ही सीमित होकर रह गया था। पर्दा प्रथा उत्तरी तथा पूर्वी भारत में अत्यधिक प्रबल थी क्योंकि भारत के इन भागों में पर्दा प्रथा का कठोरता से पालन होने लगा था। दक्षिण प्रान्तों की महिलाएं जनानाखाने में इतनी बन्द नहीं रहती थी जितनी की उत्तर के राज्यों में थी। समाज में उच्च वर्ग में पर्दा प्रथा अत्यधिक प्रचलित थी परन्तु निम्न वर्ग की स्त्रियां पर्दे का अधिक पालन इसलिए नहीं करती थी क्योंकि काम व खेत में संलग्न रहा करती थी। इन स्त्रियों को अपने आर्थिक कारणों से अपनी जात वालों के काम धन्धों में या खेतों में हाथ बंटाना होता था।[10] वास्तव में पर्दे की थोथी मर्यादा में रहकर स्त्रियों के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाया जिससे उनकी शिक्षा को भी ठेस पहुँची थी। गांव की अपेक्षा शहर की औरतों को घरों में अधिक बंद रहना पड़ता था। आर्थिक दृष्टि से भी पुरुषों पर पूर्ण रूप से निर्भर रहने के कारण स्त्रियों को पूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ता था। आर्थिक दृष्टि से वे पुरुषों पर निर्भर करती थीं, उन्हें पैतृक सम्पत्ति से भी वंचित रहना पड़ता था। यद्यपि इस काल में हमें कुछ ऐसी महिलाओं के उदाहरण मिलते हैं- जिन्होंने राजनीति व प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी तथा स्वतन्त्रतापूर्वक शासन कार्य किया था। इनमें रानी भवानी, महारानी विष्णुकुमारी (जो वर्दवान के जमींदार की माँ थी), जय दुर्गा चौधरायन, बंगाल के नवाब अलीवर्दी खां की बेगम (जिसने अपने शौहर की अनुपस्थिति में प्रशासन का संचालन किया) प्रमुख थीं।[11] गुलाम हुसैन ने सियारूल मुताखारिन में अनेक महिलाओं के नाम दिये हैं, जिन्होंने राजनीतिज्ञ और प्रशासक के

Copyright © 2012 Published by IJAER. All rights reserved.

रूप में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था।[12] इनमें शुजाउद्दीन की बेगम जेबुनिसा, उड़ीसा के गर्वनर रूस्तम जंग की बेगम दर्देनाह तथा घसीटी बेगम के नाम शामिल हैं परन्तु यह सर्वविदित तथ्य है कि इन्हें समाज की सामान्य महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ये बड़े-बड़े राजपरिवारों से सम्बन्ध रखती थी तथा आम जन-जीवन से इनका कोई सम्पर्क नहीं था। सामान्य जन में महिलाओं को कोई स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी।

इस काल में स्त्रियों की शिक्षा की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। लड़कियों को शिक्षा संस्थानों में जाने का तो शायद कोई मौका ही नहीं मिलता था। यद्यपि राजपूतों में सम्पन्न वर्ग की लड़कियों को किसी न किसी तरह की प्रारम्भिक शिक्षा मिलती थी तथापि स्त्री को समाज में उसका न्यायपूर्ण स्थान नहीं दिया जाता था। बंगाल में वैष्णव सम्प्रदाय में भी लड़कियों को शिक्षा देने के प्रवृति थी, जिससे कि वे धर्मगन्थ पढ़ सकें।[13] लड़कियों के लिए प्रायः घर के भीतर ही शिक्षा की व्यवस्था की जाती थी, परन्तु यह केवल कुलीन परिवारों में ही था। साधारण वर्ग की लड़कियों को किसी भी प्रकार की औपचारिक शिक्षा नहीं दी जाती थी। इस प्रकार सारांश रूप में कहा जा सकता है कि शिक्षा प्राप्ति का अधिकार केवल उच्च परिवार की लड़कियों को प्राप्त था, सामान्य जन को शिक्षा प्राप्ति के अधिकार से वंचित रहना पड़ता था। बालविवाह के कारण तो कन्या के लिए शिक्षा प्राप्त करना असम्भव ही था।

इस काल में बालिका वध जैसी कुप्रथा का भी प्रचलन था। जिसमें लड़कियों को पैदा होते ही मार डाला जाता था, वास्तव में लड़कियों के विवाह पर माँ-बाप को बहुत सा धन तथा सामान दहेज के रूप में देना पड़ता था इसलिए कई लोग लड़कियों को परिवार में बोझ समझते थे।[14] यह प्रथा सब जगह प्रचलित नहीं थी बल्कि कुछ क्षेत्रों में इसका अत्यधिक प्रचलन था जैसे- काठियावाड़ और कच्छ की जाड़ेजा जाति में, इलाहाबाद के समीप कच्छघाट राजपूतों में, चौहान राजपूत व अहीरों में, पंजाब व जालंधर के बेदी सम्प्रदाय में तथा राट कबीले के कुछ मुस्लमानों द्वारा अधिक व्यापक रूप से अपनायी जाती थी।[15] इस प्रथा का सबसे खराब पहलू यह था कि इस तरह का काम गुप्त रूप से किया जाता था। यद्यपि बालिका वध के अनेक कारण थे जैसे कि- अराजकता के युग में लड़कियों की सतीत्व की रक्षा करना कठिन रहा होगा। अतः इस अपमान के उत्तरदायित्व से बचने के लिए यह घृणास्प्रद प्रथा अपनायी गई होगी, दहेज से बचने हेतु भी बालिका वध प्रचलित हुआ होगा तथा उस समय की रीति के अनुसार लड़कियों का विवाह अपने से ऊँचे या बराबर के कुल में ही किया जाता था इसलिए विवाह सम्बन्धी कठिनाईयों से बचने हेतु भी यह प्रथा प्रचलन में आयी होगी। मुनहा राजपूत अपनी जाति की शुद्धता बनाये रखने के लिए वध कर देते थे।[16] यह प्रथा चाहे अभिमान या गरीबी, अन्धविश्वास या अज्ञानता के कारण प्रचलन में हो लेकिन यह अपराध थी। समाज द्वारा इस प्रथा के पालन करने से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि समाज का किस हद तक पतन हो चुका था। इस काल में न केवल कन्या वध जैसा अमानुषिक कार्य होता था वरन् कन्या वध का तरीका भी अत्यन्त बर्बर था। कहीं-कहीं तो लड़की के पैदा होते ही उसके मुँह में गाय का गोबर ठूंस दिया जाता था या गाय के दूध में सिर डूबो कर मार दिया जाता था, या नाभी की नाड़ी को मुँह पर लपेट कर तुरन्त मार दिया जाता था। कई स्थानों पर तो नवजात शिशु को अफीम खिलायी जाती थी या गड्ढा खोदकर दबा दिया जाता था। जिससे यह स्पष्ट है कि इस काल में कन्या को बोझ मानकर तथा विभिन्न विपदाओं से बचने हेतु बर्बर तरीके से उन्हें समाप्त कर दिया जाता था। किसी नवजात शिशु की हत्या से अधिक बर्बर अपराध क्या हो सकता है?

इस काल में बालविवाह का भी प्रचलन था। हिन्दू तथा मुसलमानों में प्रायः बाल विवाह का रिवाज भी बढ़ गया था। लड़कियों का विवाह बहुत छोटी आयु में ही कर दिया जाता था।[17] यद्यपि गौना व्यस्क होने पर ही होता था। बाल विवाह होने के अनेक कारण थे जैसे कि- समाज के सबसे निचले और अज्ञानी लोग अपनी आर्थिक दशा के अनुसार लड़कियों को ऐसे लोगों के पास दुल्हिन के रूप में बेच देते थे जो उनकी माँग पूरी कर सकते हों। अतः अब लड़कियों को अपनी

Copyright © 2012 Published by IJAER. All rights reserved.

इच्छानुसार वर चुनकर विवाह करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। यद्यपि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बाल विवाह का प्रचलन प्राचीन काल से ही था। मनुसंहिता में भी लड़कियों के विवाह की आयु 12 वर्ष दी गयी है तथा मध्यकाल में तो इस प्रथा का अत्याधिक कठोरता से पालन किया गया था, परन्तु अब यह प्रथा एक तरह का अभिशाप बन गयी थी। जहाँ कन्या की स्थिति मात्र बन्ध्या की भाँति हो गयी थी। इस दोष के विषय में अनेक यूरोपीय पर्यटकों एवं लेखकों ने लिखा था- जिनमें क्रोफर्ड, स्क्रेफ्टन, दुबुता, बुकानन आदि थे कि बाल विवाह सम्भवतः समाज में नैतिक ृद्धता बनाये रखने के उद्देश्य से प्रथा का रूप धारण करता गया।[18] वास्तव में छोटी आयु में माँ बन जाना, कमजोर बच्चों से घिरे रहना ऐसी परिस्थितियाँ थी जिनमें भारतीय महिला दुर्दशा ओर व्यथा की जीती जागती तस्वीर बन गई।

बाल विवाह के कारण ही समाज में बाल विधवाओं की संख्या भी बहुत अधिक बढ़ गयी थी। इन विधवाओं को अत्यधिक अपमानजनक जीवन व्यतीत करना पड़ता था। विधवाओं को पुर्नविवाह के अधिकार से वंचित रखा गया था। यद्यपि प्राचीन काल में विधवा विवाह का प्रचलन था लेकिन अब समाज में दिखावा इतना अधिक बढ़ गया था कि विधवा विवाह को पाप समझा जाने लगा था। विधवाओं को ब्रह्मचर्य पालन करना अनिवार्य था जो एक सख्त सामाजिक प्रथा थी। समाज में मनुसंहिता के अनुसार विधवाओं के कर्तव्य निश्चित कर दिये : ‘‘उसे (विधवा को) स्वेच्छा से कंदमूल और फल फूल खाकर अपने ृारीर को क्षय कर देना चाहिए, लेकिन सब इसका पति मर चुका हो तो उसे पर पुरु-ा का नाम तक नहीं लेना चाहिए, उसे अपने साथ हुए सभी अन्यायों को अन्तिम क्षणों तक क्षमा करते आना चाहिए। शारीरिक सुखों से बचना चाहिए और सदाचार के उन सभी नियमों का प्रसन्नतापूर्वक पालन करना चाहिए, जिन पर एक पति में श्रद्धा रखने वाली सभी स्त्रियाँ चलती आ रही हैं।’’[19] विधवाओं को अत्यधिक संदेह की दृष्टि से देखा जाता था तथा सामाजिक कलंक और अन्धविश्वास की भावनाओं के वातावरण में विधवायें जैसे-तैसे अपना जीवन बिताती थीं।

समाज में इस अपमानजनक जीवन से बचने के लिए ही विधवाओं ने सती जैसी प्रथा का आश्रय लेना आरम्भ कर दिया था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बहुत सी स्त्रियाँ अपनी खुशी से सती होती थीं। उनका विश्वास था कि अपने पति के शव के साथ जलकर मर जाने से उन्हें मृत्यु के बाद भी अपने पति के साथ रहने को मिलेगा। स्त्रियों के मन में यह संस्कार सा बन गया था।[20] यद्यपि इस प्रथा का प्रारम्भ स्वैच्छिक था परन्तु धीरे-धीरे यह प्रथा मजबूरी एवं बाध्यता बन गयी, जो विशेष रूप से राजस्थान, बंगाल तथा कई अन्य उत्तरी राज्यों में अपनायी जा रही थी। जिन यूरोपियों ने इस प्रथा का पता लगाया उन्हें यह अत्यन्त घृणास्पद प्रतीत हुई। यद्यपि कुछ अंग्रेजी अफसरों ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सर्वोच्च सरकार से सती प्रथा पर रोक लगाने की अनुमति माँगी थी किन्तु सरकार ने उन्हें सिर्फ यह आदेश दिया कि वे सती प्रथा को रोकने के लिए लोगों को समझा-बुझा तो सकते हैं परन्तु इस विषय में बल का प्रयोग नहीं कर सकते। यह सर्वविदित तथ्य है कि सती प्रथा प्राचीन काल से ही चली आ रही है।[21] यह अभी तक रहस्य बना हुआ है कि सती प्रथा कैसे शुरू हुई। मैक्समूलर का यह विश्वास है कि ‘‘ऋग्वेद में विधवाओं का उल्लेख करने वाले एक अंश में विधवाओं की सामाजिक स्थिति को सबसे आगे बताते हुए एक शब्द अग्रे का प्रयोग किया गया है, लेकिन जब इस अग्रे शब्द को किसी रहस्यमयी तरीके से अग्नि बना दिया गया तो विधवा का स्थान अग्नि में बदल गया।[22]

सारांश में कहा जा सकता है कि 18वीं शताब्दी में सभी वर्गों और जातियों की अधिकांश विधवाओं का जीवन पीड़ा और व्यथा की लम्बी कहानी मात्र था।

इस काल में बहुविवाह प्रथा का भी प्रचलन था, यद्यपि बहुविवाह प्रथा का प्रचलन प्राचीनकाल से ही रहा था परन्तु अब बहुविवाह की कोई सीमा नहीं थी। बहुविवाह प्रथा अमीर एवं उच्च वर्गों तक सीमित थी। अपनी सम्पन्नता के कारण ही ये एक से अधिक पत्नियाँ रखते थे जो उनके लिए सम्पन्नता का प्रतीक माना जाता था। धनी पुरुष द्वारा एक से अधिक विवाह

Copyright © 2012 Published by IJAER. All rights reserved.

IJAER

करने के कारण ही स्त्री पर अत्यधिक अत्याचार किये जाते थे।[23] राजवंशों, बड़े जमींदारों तथा धनाढ्य घरों में बहुपत्नी प्रथा के साथ-साथ दहेज प्रथा का भी प्रचलन था। परन्तु साधारण लोग एक ही विवाह करते थे। उत्तर प्रदेश तथा बंगाल के कुलीन परिवारों में बहुपत्नी प्रथा का रूप बहुत अधिक भीषण था। सतीश चन्द्र लिखते हैं कि ''उच्च वर्ग चाहे अमीर हो या राजा या जमींदार उनमें रहन-सहन इत्यादि में विशेष अन्तर नहीं था।[24] इस समय तक आकर बहुविवाह की प्रणाली ने विकराल रूप धारण कर लिया था। एक कुलीन एक ही दिन में दो, तीन या चार स्त्रियों के साथ विवाह कर सकता था।[25] इसी से सामाजिक व्याभिचार तथा अनैतिकता को बढ़ावा मिला था तथा स्त्रियों की स्थिति अत्याधिक दयनीय हो गयी। इसी के कारण पारिवारिक अशान्ति और कलह का वातावरण व्याप्त हो गया था, हाँ इतना अवश्य था कि यह प्रथा साधारणजन में प्रचलित नहीं थी।

अतः कहा जा सकता है कि 18वीं शताब्दी का युग अन्धकार का युग था। सामाजिक कठोरता और असंगत सामाजिक प्रथाएं, 18वीं शताब्दी के भारत की विशेषता बन गई थी। उस समय के धर्मों के और अधिक रूढ़िग्रस्त बन जाने से इस सामाजिक कठोरता और असंगति में वृद्धि हुई। इसी समय कोई धार्मिक या नैतिक उपदेशक नहीं था जो अज्ञानियों को ज्ञान का मार्ग दिखाता, तथा धीरे-धीरे 18वीं शताब्दी की धार्मिक प्रवृत्ति, गई-बीती शताब्दियों की पुरानी प्रथाओं और विश्वासों को अपनाने की बन गई। 18वीं शताब्दी में न केवल सामाजिक वरन् आर्थिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में पतन या अवनति ही दृष्टिगोचर होते हैं इसी समय नारी की स्थिति भी अत्याधिक शोचनीय हो गयी थी, सभी प्रकार की सामाजिक कुरीतियों को शास्त्रोचित समझा गया था तथा उन्हें विधिसम्मत तथा गौरव की बात मान लिया गया था। इस प्रकार 18वीं शताब्दी असहिष्णुता और असंगत प्रथाओं का दौर था। जिनका शिकार मुख्य रूप से महिलाओं को ही बनना पड़ता था। इस समय तक नारियों का जीवन पतन के गर्त में पहुँच चुका था, उसे समाज में वह सम्मान व स्थान प्राप्त नहीं था जो प्राचीनकाल में उसे प्राप्त था उसकी स्थिति पत्तनोमुख थी।

निष्कर्षतः प्राचीनकाल एवं मध्यकाल में भी नारी के ऊपर कुछ प्रतिबन्ध थे परन्तु इसके साथ ही साथ वे परिवार की महत्वपूर्ण सदस्य भी मानी जाती थीं। परन्तु अब स्त्री को उन समस्त अधिकारों से भी वंचित कर दिया गया था।

संदर्भ सूची

1. सरकार, जे.एन., ''फाल ऑफ द मुगल एम्पायर'', भाग-प्ट पृ. 343-44.

2. हबीब इरफान, ''द अगरेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया'', पृ. 338-339.

3. चौपडा, पी.एन. पुरी, बी.एन. दास, एम.एन., ''भारत का सामाजिक, सांस्औतिक और आर्थिक इतिहास'', मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 2001.

4. पूर्वोक्त.

5. वर्मा, हरिश्चन्द्र, ''मध्यकालीन भारत'', खण्ड-2, हिन्दी माध्यम, कार्यान्वय निर्देशालय, दिल्ली, 2004.

6. चौपडा, पी.एन., पुरी बी.एन., दास एम.एन., ''भारत का सामाजिक, सांस्औतिक और आर्थिक इतिहास'', मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 1975.

7. पूर्वोक्त.

8. पाण्डेय, डा. धनपति, ''आधुनिक भारत का इतिहास'', मीनाक्षी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.

9. ग्रोवर, बी.एल., ''आधुनिक भारत का इतिहास'', एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी लि., नई दिल्ली, 2010.

IJAER

Copyright © 2012 Published by IJAER. All rights reserved.

10. चौपडा पी.एन., पुरी बी.एन., दास एम.एन., ''भारत का सामाजिक, सांस्औतिक और आर्थिक इतिहास'', मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, 2005.

11. वर्मा, हरिश्चन्द्र, ''मध्यकालीन भारत'', खण्ड-2, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 2007.

12. हुसैन गुलाम औत सियारूप मुताखरिन.

13. राय, सी., ''हिस्ट्री ऑफ बंगाल''.

14. मित्तल, डा. ए.के., ''भारत का राजनीतिक एवं सांस्औतिक इतिहास'' (1707-1950), साहित्य भवन, दिल्ली.

15. वर्मा, हरिश्चन्द्र, ''मध्यकालीन भारत'', खण्ड-2, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 1993.

16. चौपडा, पी.एन., पुरी बी.एन., दास एम.एन., ''भारत का सामाजिक सांस्औतिक और आर्थिक इतिहास'', मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 1975.

17. मित्तल, डा. ए.के., ''भारत का राजनीतिक एवं सांस्औतिक इतिहास (1707-1950), साहित्य भवन, दिल्ली.

18. वर्मा, हरिश्चन्द्र, ''मध्यकालीन भारत'', खण्ड-2, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली, 2004.

19. चौपडा, पी.एन., पुरी बी.एन., दास एम.एन., ''भारत का सामाजिक सांस्औतिक और आर्थिक इतिहास'', मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 2007.

20. गुप्त, विश्वप्रकाश व गुप्त मोहिनी, ''राम मोहन राय व्यक्ति और विचार'', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996.

21. मजूमदार, आर.सी., ''द हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इण्डियन पीपुल'', खण्ड-2, (1960) 567 खण्ड-3 (1962), भारतीय विद्या भवन, बम्बई.

22. मैक्समूलर, एफ. रामऔष्ण, ''हिज लाइफ एण्ड सेइंग्स'', 2002.

23. मित्तल, डा. ए.के., ''भारत का राजनीतिक एवं सांस्औतिक इतिहास (1707-1950), साहित्य भवन, दिल्ली.

24. चन्द्र, सतीश, ''राम एस्पैक्ट ऑफ इण्डियन विलेज सोसाइटी इन नोर्थ इण्डिया ड्यूरिंग द एटिन सेन्चुरी'', भाग-I, 2004.

25. चौपडा, पी.एन., पुरी बी.एन., दास एम.एन., ''भारत का सामाजिक सांस्औतिक और आर्थिक इतिहास'', मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 2007.

IJAER

Copyright © 2012 Published by IJAER. All rights reserved.